भारतीय शिक्षा पर टिप्पणी

थॉमस बैबिंगटन मैकॉले

वह प्रसिद्ध टिप्पणी जिसमें मैकॉले अपना सारा प्रभाव डालकर तर्क करता है कि भारत में शिक्षा शास्त्रीय या स्थानीय भाषाओं के बजाय अंग्रेजी में दी जानी चाहिए। वह भूरे साहब पैदा करना चाहता था। लेकिन क्या वह केवल यही बनाना चाहता था ?

जैसा कि लगता है, सार्वजनिक शिक्षा समिति के सदस्य कुछ सज्जनों की राय है कि जो पाठ्यवस्तु उन्होंने अब तक जारी रखी है, वह ब्रिटेन की संसद द्वारा 1813 में सख्ती से पालन करने के लिए निर्धारित की गई थी और यदि यह मत सही है तो, उसमें परिर्वतन के लिए एक वैधानिक कानून आवश्यक होगा; ऐसे में मैंने यह ठीक समझा है कि मैं विपरीत टिप्पणियों को तैयार करने में भाग न लूं जो अब हमारे सामने हैं और इस विषय पर जो मुझे कहना है, उसे तब तक सुरक्षित रखूं जब तक कि वह भारत की परिषद् के सदस्य के तौर पर मेरे सामने न आए।

मुझे ऐसा नहीं लगता कि संसद का कानून, निर्माण की किसी भी कलात्मकता के द्वारा, ऐसा बनाया जा सकता है कि उससे वह अर्थ निकले जो उससे निकाला गया है। जिनका अध्ययन किया जाना है, उन खास भाषाओं या विज्ञानों में कुछ नहीं है। एक राशि अलग से रखी गई है, ''भारत के साहित्य के पुनरूज्जीवन एवं उन्नयन और विद्वान देशवासियों के प्रोत्साहन और ब्रितानवी राज्य क्षेत्रों के निवासियों के लिए विज्ञानों के ज्ञान की शिक्षा को प्रारंभ करने और उसे प्रोत्साहन देने के लिए''। यह तर्क दिया या मान लिया जाता है कि संसद साहित्य से केवल अरबी और संस्कृत साहित्य समझी हो सकती है, कि उन्होंने ''विद्वान देशवासी'' का सम्मानजनक सम्बोधन कभी भी एक ऐसे देशवासी को नहीं दिया होगा जो कविता के मिल्टन, लोक के तत्वज्ञान और न्यूटन के भौतिक शास्त्र से परिचित है पर उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग उन लोगों के लिए किया, जिन्होंने हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थों, कुशा दूब के सब प्रयोगों और देवता में सब रहस्यों के समा जाने का अध्ययन किया होगा। यह बहुत संतोष देने वाली व्याख्या नहीं लगती। समानान्तर उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि ज्ञान में यूरोप के देशों से कभी श्रेष्ठ मिस्र के पाशा को जो अब उनसे कहीं नीचे पहुंच चुका है, एक राशि उपलब्ध करा दी गई हो, ''मिस्र के साहित्य को पुनरूज्जीवित करने और उसके उन्नयन और विद्वान देशवासियों को प्रोत्साहन देने के लिए'' तो इसका क्या कोई यह अर्थ निकालेगा कि उसका आशय था कि उसके पाशावी युवा चित्रलिपि का अध्ययन करने के लिए वर्षों गंवा दें- ओसिरिस की कहानी में छिपे उन सब सिद्धांतों का अध्ययन करने और संभावित सत्य के साथ उस अनुष्ठान का पता लगाने के लिए, जिसे प्राचीन काल में बिल्ली और प्याज की आराधना के लिए सम्पन्न किया जाता था ? क्या उस पर विसंगति का दोषारोपण न्यायोचित होगा, यदि अपनी युवा प्रजा को गूढ़ चित्रलिपि का अर्थ निकालने का काम देने के बजाय, वह उन्हें अंग्रेजी या फ्रेंच भाषाएं सीखने के लिए और उन सब विज्ञानों के अध्ययन का आदेश दे जिसकी प्रमुख कुंजियां इन भाषाओं में हैं ?

जिन शब्दों पर पुरानी व्यवस्था के समर्थक विश्वास कर रहे हैं, वे उन्हें सही नहीं ठहरा रहे हैं और अन्य शब्द दूसरे पक्ष के बारे में बिल्कुल निर्णायक लग रहे हैं। यह लाख रुपया अलग रखा जा रहा है, न केवल ''भारत में साहित्य को पुनरूज्जीवित करने के लिए''- जुमला जिस पर उनकी पूरी व्याख्या टिकी हुई है- बल्कि ''ब्रितानवी राज्य क्षेत्रों के देशवासियों में विज्ञानों के ज्ञान की शिक्षा प्रारंभ करने और प्रोत्साहित करने के लिए'' तो भी जिनकी मैं हिमायत कर रहा हूं, उन परिवर्तनों को प्रामाणिक बताने करने के लिए भी ये शब्द अकेले काफी हैं।

यदि परिषद् मेरे विचारों और तर्क से सहमत है तो किसी वैधानिक कानून की आवश्यकता नहीं होगी। यदि वे मुझसे अलग राय रखते

परिचय : ब्रिटिश राजनेता एवं उन्नीसवीं सदी के आरंभ के लेखक थॉमस बैबिंगटन मैकॉले इंग्लैण्ड में संवैधानिक प्रजातंत्र के समर्थक रहे और भारत की गवर्नर जनरल की परिषद् के कानून सदस्य थे। मैकॉले ने भारतीय दण्ड संहिता एवं 'द हिस्ट्री ऑफ इंग्लैण्ड फ्रॉम द एक्सेसन ऑफ जेम्स-II' सहित अनेक पुस्तकें लिखीं।

हैं तो मैं 1813 के चार्टर के कठिनाई पैदा कर रहे खण्ड को निरस्त करते हुए एक संक्षिप्त कानून तैयार करूंगा।

जिस दलील पर मैं विचार कर रहा हूं, वह केवल कानूनी कार्रवाई के स्वरूप को प्रभावित करती है। लेकिन, प्राच्य शिक्षा व्यवस्था के प्रशंसकों ने एक दूसरा तर्क काम में लिया है, जिसे यदि हम वैध मानते हैं तो वह सब परिवर्तनों के विरुद्ध निर्णायक होगा। वे सोचते हैं कि जनता का विश्वास वर्तमान व्यवस्था में निबद्ध है और यह कि किसी भी धन के उपयोग को बदलना, जो अब तक अरबी और संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहित करने के लिए खर्च किया गया है, निस्संदेह लूट-खसोट होगी। यह समझना आसान नहीं है कि तर्क की किस प्रक्रिया द्वारा वे इस निष्कर्ष पर पहुंच सके होंगे। जो अनुदान सार्वजनिक तिजोरी से साहित्य के प्रोत्साहन के लिए दिए जाते हैं, वे उन अनुदानों से किसी भी तरह भिन्न नहीं हैं, जो उसी तिजोरी से अन्य वास्तविक अथवा काल्पनिक उपयोगिता के कार्यों के लिए दिए जाते हैं। हमने एक स्थान पर सेनेटोरियम स्थापित किया जो हमने सोचा कि स्वास्थ्यवर्धक है। तो क्या नतीजे हमारी अपेक्षा के अनुकूल नहीं हैं ? इससे हम वहां सेनेटोरियम रखने के लिए निबद्ध हैं। हम एक पाये का निर्माण आरंभ करते हैं। क्या उसके निर्माण को बन्द कर देना जनता के विश्वास का उल्लंघन होगा यदि हमें बाद में यह विश्वास करने का आधार मिलता है कि भवन का कोई उपयोग नहीं होगा।

संपत्ति के अधिकार निस्संदेह पवित्र हैं। लेकिन उन अधिकारों को खतरा और किसी से नहीं बल्कि हमारी उस आदत से है जब हम इन अधिकारों को उन चीजों पर चस्पा करते हैं जो इन अधिकारों के दायरे में आती ही नहीं हैं। वे लोग जो इस प्रकार के दुरूपयोग को सम्पत्ति की पवित्रता का दर्जा देते हैं, वास्तव में सम्पत्ति की संस्था को बदनाम करते हैं और दुरूपयोग को आसान बनाते हैं। यदि सरकार ने किसी व्यक्ति को औपचारिक आश्वासन दिया है, बल्कि कहना चाहिए, यदि सरकार ने किसी व्यक्ति के दिमाग में वाजिब अपेक्षाएं जगाई हैं कि वह शिक्षक के रूप में या संस्कृत और अरबी के शिक्षार्थी के रूप में एक निश्चित आय प्राप्त करेगा तो मैं उस व्यक्ति के आर्थिक हितों का सम्मान करूंगा- बल्कि मैं उस व्यक्ति के प्रति और अधिक उदारता बरतूंगा बजाय इसके कि जनता के विश्वास पर प्रश्न उठे। लेकिन सरकार द्वारा ऐसी भाषा और विशिष्ट विज्ञानों को पढ़ाने का दायित्व लेने की बात करना मुझे बेमतलब लगता है। जो भाषाएं अनुपयोगी हो सकती हैं, विज्ञान ध्वस्त हो सकते हैं। किसी भी सरकारी निर्देश में ऐसा एक भी शब्द नहीं है जिससे यह अर्थ निकाला जा सके कि इस विषय पर भारत सरकार ने यह वचन देने का कभी कोई इरादा या कभी ऐसा विचार किया था कि इस धन का उपयोग अपरिवर्तनशील है। यदि ऐसा नहीं होता तो मैं अपने पूर्ववर्ती निर्णयकर्त्ताओं को इस अधिकार से वंचित कर देता कि ऐसे विषय पर वे हमें ऐसा कोई वचन देने के लिए बाध्य करें। मान लीजिए कि, एक सरकार ने पिछली शताब्दी में अत्यधिक निष्ठापूर्ण कानून बनाया कि सारी जनता को एक निश्चित समय में चेचक का टीका लगाया जाना चाहिए; क्या वह सरकार जेनर की खोज के बाद भी इस कार्य में लगे रहने के लिए बाध्य होगी ?

इस प्रकार के वचन/वायदे, जिनके निष्पादन का कोई दावा नहीं करता, जिसमें कोई अनुदान देने की बात नहीं है; ये विहित अधिकार, जो किसी में विहित नहीं है; सम्पत्ति जिसका कोई मालिक नहीं है; यह लूट जिससे कोई और गरीब नहीं हो जाता, ये चीजें मुझसे ऊंची क्षमता वाले व्यक्ति समझ सकते हैं- इस तर्क को मैं सिर्फ शब्दों का गढ़ा हुआ रूप मानता हूं, जिसे हर दुरूपयोग के बचाव में प्रयोग किया जाता है, जिसके लिए कोई और दलील न दी जा सकती हो।

मैं मानता हूं कि परिषद् में गवर्नर-जनरल को पूर्ण अधिकार है कि ये लाख रुपए किसी भी तरह से ऐसे ज्ञान की प्रोन्नति के लिए व्यय करें, जो सर्वाधिक उपयुक्त हो। मैं मानता हूं कि महामहिम यह निर्देश देने के लिए बिल्कुल स्वतंत्र हैं कि इसे अब अरबी और संस्कृत को प्रोत्साहन देने के लिए न लगाया जाए- उसी तरह से जैसे वह निर्देश देते हैं कि मैसूर में चीतों को मारने के लिए रखे गए पुरस्कार को कम कर दिया जाएगा या कि कोई सरकारी पैसा गिरजाघर में गीत गाने पर खर्च नहीं किया जाएगा।

अब हम मुद्दे की तह में जाते हैं। हमारे पास खर्च करने के लिए धन है क्योंकि सरकार इस देश के लोगों के बौद्धिक उन्नयन के लिए निर्देश देगी। सरल-सा प्रश्न है, इसे लगाने का सर्वाधिक उपयोगी तरीका क्या है।

एक बिन्दु पर सभी भागीदार सहमत लगते हैं कि भारत के इस भाग के रहने वालों के बीच जो बोलियां आमतौर पर बोली जाती हैं, उनमें न तो साहित्य है और न ही वैज्ञानिक जानकारियां और इसके अतिरिक्त वे इतनी विपन्न और गंवारू हैं कि जब तक उन्हें किसी के द्वारा समृद्ध नहीं किया जाएगा, इनमें किसी मूल्यवान कृति का अनुवाद करना आसान नहीं होगा। सब ओर से लगता है, यह स्वीकार कर लिया गया है कि जिनके पास उच्च शिक्षा जारी रखने के साधन हैं उन वर्गों के लोगों का बौद्धिक उन्नयन किसी भाषा के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, उनमें से किसी बोली के द्वारा नहीं।

तब वह भाषा क्या होगी ? समिति के आधे सदस्यों का मानना है कि यह अंग्रेजी होनी चाहिए। बाकी आधे सदस्य पुरजोर अनुशंसा

करते हैं कि अरबी और संस्कृत होनी चाहिए। सारा सवाल, मुझे लगता है, यह है कि कौनसी भाषा जानना सर्वाधिक उपयुक्त होगा।

संस्कृत या अरबी भाषा का मुझे कोई ज्ञान नहीं है, ...लेकिन वे कितनी मूल्यवान हैं, उसका सही अन्दाज लगाने के लिए मैंने जो संभव था, वह किया है। मैंने अरबी और संस्कृत से अनुवाद किए गए सर्वाधिक प्रतिष्ठित ग्रंथों को पढ़ा। मैंने यहां और अपने देश में उन लोगों से वार्तालाप किया है, जो पूर्वी भाषाओं के विशिष्ट विशेषज्ञ हैं। मैं स्वयं प्राच्यविदों द्वारा किए गए मूल्यांकन को वैसा ही स्वीकार करने के लिए बिल्कुल तैयार हूं। मैंने उनमें से कभी एक को भी इससे इंकार करते नहीं पाया कि एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय का एक अकेला शेल्फ भारत और अरब के सम्पूर्ण देशज साहित्य के बराबर मूल्यवान हैं। पाश्चात्य साहित्य की आंतरिक श्रेष्ठता वास्तव में समिति के उन सदस्यों द्वारा पूर्ण रूप से स्वीकार की गई है, जो शिक्षा की प्राच्य योजना का समर्थन करते हैं।

मैं मानता हूं कि इस पर मुश्किल से ही विवाद हो सकता है कि काव्य में पूर्वी लेखक सर्वोच्च हैं और मैं निश्चित रूप से कभी किसी ऐसे प्राच्यविद् से नहीं मिला जो विश्वासपूर्वक यह मानता हो कि अरबी और संस्कृत की काव्य की तुलना महान यूरोपीय देशों से की जा सकती है। लेकिन जब हम कल्पना के ग्रन्थों से ऐसे ग्रन्थों की तरफ आते हैं, जिनमें तथ्यों का वर्णन और सामान्य सिद्धांतों पर शोध किया गया हो तो यूरोपियों की श्रेष्ठता नितान्त रूप से अतुलनीय हो जाती है। मेरा विश्वास है, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी, कि संस्कृत भाषा में लिखी गई सभी पुस्तकों से जो ऐतिहासिक जानकारियां एकत्रित की गई हैं, वे कम मूल्यवान हैं बनिस्बत उनके जो इंग्लैण्ड में प्रारंभिक स्कूलों में प्रयोग किए गए अत्यन्त संक्षिप्त विवरणों में मिलती है। भौतिक या नैतिक दर्शन की हर शाखा में दोनों देशों की सापेक्षिक स्थिति लगभग एक जैसी ही है।

तो अब हम कहां पहुंचे ? हमें उन लोगों को शिक्षित करना है जो इस समय अपनी मातृभाषा में शिक्षित नहीं किए जा सकते। हमें उन्हें कोई विदेशी भाषा सिखानी होगी। हमारी अपनी भाषा के बारे में जो दावे हैं, उन्हें दोबारा संक्षेप में दोहराने की भी शायद ही जरूरत हो। पश्चिम की भाषाओं में भी यह सर्वोपरि है और ऐसी कल्पनायुक्त रचनाओं से भरी पड़ी हैं, जो उच्चतम से भी निकृष्ट नहीं हैं, जो हमें ग्रीस से विरासत में मिली हैं, जिनमें मात्र कथानक के रूप में भी देखें तो शायद ही कभी उन्हें मात दी गई हो और जो नैतिक और राजनैतिक शिक्षा की वाहिका के रूप में देखें तो कभी भी उसकी बराबरी नहीं हो सकी है। मानव जीवन और मानव प्रकृति के न्यायपूर्ण और जीवन्त चित्रण के साथ; तत्व-मीमांसा, नैतिकता, सरकार, विधिशास्त्र और व्यापार अत्यन्त गूढ़ चिंतन के साथ; प्रत्येक प्रायोगिक विज्ञान के बारे में संपूर्ण और सही जानकारी जिससे स्वास्थ्य संरक्षित रहता है, आराम में वृद्धि के लिए या इंसान की वृद्धि को विकसित करने के लिए। कोई भी जो इस भाषा को जानता है, उसकी इस पूरी विशाल बौद्धिक सम्पदा तक पहुंच है, जो सर्वाधिक विद्वान देशों ने सृजित की है और जिसका पिछली नब्बे शताब्दियों में संग्रह किया है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अब इस भाषा में विस्तार आ चुका है, साहित्य अधिक मूल्यवान है बनिस्बत उस सब साहित्य के, जो तीन सौ वर्ष पूर्व दुनिया की सब भाषाओं को भी मिला दें तो, उपलब्ध था। मात्र इतना ही नहीं है। भारत में अंग्रेजी प्रशासक वर्ग द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। यह सरकार में सभी पदों पर बैठे वहां के निवासियों के उच्च वर्ग द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। यह संभवतः पूर्व के समूहों के आर-पार फैले वाणिज्य और व्यापार की भाषा बनने वाली है। यह दो महान यूरोपीय समुदायों की भाषा है जो ऊपर उठ रहे हैं- एक दक्षिण अफ्रीका में, दूसरा आस्ट्रेलियन-एशिया में; ये वे समुदाय हैं जो हर वर्ष अधिक महत्त्वपूर्ण होते जा रहे हैं; और हमारे भारतीय साम्राज्य से अधिक निकटता से जुड़े हुए हैं। चाहे हम अपने साहित्य के आंतरिक मूल्य को देखें, चाहे देश की विशिष्ट स्थिति को देखें, हम सबसे वजनदार विचारणीय वजह यह पाएंगे कि सब विदेशी जबानों में अंग्रेजी जबान ही है जो देशी प्रजा के लिए सर्वाधिक उपयोगी है।

हमारे सामने सिर्फ प्रश्न यह है कि जब इस भाषा को सिखाना हमारी ताकत में है तो क्या हम उन भाषाओं को सिखाएंगे जिनमें, सभी मानते हैं, किसी भी विषय पर कोई भी पुस्तकें नहीं हैं, जो हमारी अपनी पुस्तकों से तुलना करने लायक हों; जब हम यूरोपीयन विज्ञान को पढ़ा सकते हैं, तो क्या हम उन्हें वे प्रणालियां सिखाएंगे जो, सभी स्वीकार करते हैं, जब यूरोप की प्रणालियों से अलग होती है तो वह फर्क हानिकारक होता है। जब हम ठोस दर्शन और वास्तविक इतिहास को संरक्षण दे सकते हैं, तो क्या वह सार्वजनिक खर्च उन चिकित्सा सिद्धांतों पर होगा, जो एक अंग्रेज चिकित्सक के लिए असम्माननीय होगा- खगोल शास्त्र जो एक अंग्रेजी आवासी स्कूल की लड़कियों के लिए हंसी और मजाक का कारण बनेगा- इतिहास, जिसमें बेशुमार 30 फीट ऊंचे राजा हैं और जो तीस हजार साल तक राज करते हैं, - भूगोल, जो चाशनी और मक्खन के समूहों से निर्मित हुआ है। अपने मार्गदर्शन के लिए हम अनुभवविहीन नहीं हैं। इतिहास में उसी प्रकार के अनेक उदाहरण मौजूद हैं और वे सभी समान सबक सिखाते हैं। नए जमाने में भी बहुत पहले नहीं, एक सम्पूर्ण समाज के लिए पूर्वग्रहों को मिटाने के, - ज्ञान के प्रसार, रुचि को शुद्ध करने एवं उपलब्ध महान आदेश के दो स्मरणीय उदाहरण- उन देशों के हैं जो हाल ही में अज्ञानी और बर्बर रहे हैं।

पहला उदाहरण जो मैं दे रहा हूं, वह है पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त और सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में पश्चिमी देशों में साहित्य का महान पुनरूज्जीवन। उस समय पढ़ने योग्य लगभग प्रत्येक चीज प्राचीन यूनानियों और रोमनों की कृतियों में थी। यदि हमारे पूर्वज ऐसा करते जैसा कि सार्वजनिक शिक्षा की समिति ने अब तक किया है; यदि उन्होंने सिसरो और टेसीसस की भाषा को नजरन्दाज किया होता; यदि उन्होंने हमारे अपने द्वीपों की पुरानी बोलियों तक अपना ध्यान सीमित कर दिया होता; यदि उन्होंने कुछ भी नहीं छापा होता और विश्वविद्यालयों में कुछ भी नहीं पढ़ाया होता सिवाय एंग्लो-सेक्सन विवरणों और नोरमन-फ्रेंच में रूमानों के, तब क्या इंग्लैण्ड वैसा होता जैसा कि आज है। जो मूर और एंशम के लिए ग्रीक और लेटिन थी, हमारी जबान भारत के लोगों के लिए है। इंग्लैण्ड का साहित्य अब क्लासिक पुरा-संपदा से अधिक मूल्यवान है। मुझे संदेह है कि संस्कृत साहित्य उतना मूल्यवान है जितना कि हमारे सेक्सन और नोरमन पूर्वजों का है। कुछ विभागों में- इतिहास में, उदाहरण के लिए, मैं निश्चित हूं कि ऐसा बहुत कम है।

एक दूसरा उदाहरण जो कहा जा सकता है अभी भी, हमारी आंखों के सामने है। पिछले एक सौ बीस वर्षों में एक देश जो पहले वैसी जंगली स्थिति में था, जैसी स्थिति में हमारे पूर्वज धर्मयुद्धों से पहले थे, धीरे-धीरे अज्ञान की स्थिति से, जिसमें वह डूबा हुआ था, बाहर आ गया और सभ्य समुदायों में अपनी जगह बना चुका है- मैं रूस की बात कर रहा हूं। अब उस देश में एक बड़ा शिक्षित वर्ग है, जिसमें ऐसे लोग बहुत हैं जो राज्य की सेवा में उच्चतम कार्य करने में सक्षम हैं और किसी भी तरह से उन लोगों से घटिया नहीं हैं, जो सर्वाधिक कुशल हैं और पेरिस और लन्दन के सर्वोत्तम दायरों को सुशोभित कर रहे हैं। यह आशा करने का कोई कारण नहीं है कि यह विस्तृत साम्राज्य जो हमारे परदादाओं के समय में शायद पंजाब से पीछे था, हमारे पोतों के समय में विकास की राह में फ्रांस और ब्रिटेन के नजदीक पहुंचने की कोशिश कर रहा होगा। और यह परिवर्तन कैसे किया गया ? राष्ट्रीय पूर्वग्रहों की चापलूसी करने से नहीं; युवा मास्कोवासियों के दिमागों को वृद्ध महिलाओं की उन कहानियों को परोसने से नहीं जिन पर उसके पिता विश्वास करते थे : उसका मस्तिष्क सेंट निकोलस के बारे में झूठे पुराणों द्वारा भरने से नहीं : उसे उस बड़े सवाल का अध्ययन करने के लिए प्रेरित करने से नहीं कि दुनिया की रचना 13 सितम्बर को की गई थी या नहीं; उसे ''विद्वान देशवासी'' पुकार कर नहीं जब उसने ज्ञान के उन सब बिन्दुओं पर महारत हासिल कर ली थी : बल्कि उसे वे भाषाएं सिखाकर जिनमें जानकारियों का सर्वाधिक वृहद् भंडार इकट्ठा हो गया था और इस प्रकार पूरी जानकारी उसकी पहुंच के अन्दर लाकर। पश्चिमी यूरोप की भाषाओं ने रूस को सभ्य बनाया। मैं संदेह नहीं कर सकता कि वे हिन्दू के लिए वही करेंगे जो उन्होंने तार्तारों के लिए किया था।

जिस पाठ्यक्रम की, सिद्धांत और व्यवहार दोनों ही अनुशंसा करते हैं, उसके खिलाफ तर्क क्या है ? यह कहा जाता है कि हमें देशवासियों का सहयोग सुनिश्चित करना चाहिए और यह कि यह तभी कर सकते हैं कि जब संस्कृत और अरबी सिखाएं।

मैं किसी भी तरह से स्वीकार नहीं कर सकता कि जब उच्च बौद्धिक उपलब्धियों वाला कोई देश तुलनात्मक दृष्टि से अज्ञान में स्थित देश की शिक्षा की देखरेख करने की जिम्मेदारी लेता है, तब सीखने वाले पूरी तरह से उस पाठ्यक्रम को तय करते हैं। उसको शिक्षक तय करते हैं। हालांकि, उस विषय के बारे में कुछ यह कहने की जरूरत नहीं है, क्योंकि प्रत्युत्तरविहीन प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि हम अभी देशवासियों का सहयोग सुनिश्चित करने का प्रयास नहीं कर रहे हैं, न तो जो वह सीखना चाहते हैं और जिसके लिए वे लालायित हैं, उसे रोक रहे हैं और न ही झूठ-मूठ के सीखने को उन पर थोप रहे हैं, जिससे उन्हें मतली आती है।

यह प्रमाणित तथ्य है कि अरबी और संस्कृत छात्रों को हमें मजबूर होकर भुगतान करना पड़ता है जबकि वे, जो अंग्रेजी सीखते हैं, हमें भुगतान करने के लिए तैयार रहते हैं। किसी भी निष्पक्ष व्यक्ति के दिमाग में कभी भी देशवासियों की पावन बोलियों के लिए प्रेम और आदर के पक्ष में दुनिया के सब भाषण भी इस निर्विवाद सत्य को झुठला नहीं सकते कि हम अपने समस्त विशाल साम्राज्य में एक भी छात्र नहीं ढूंढ़ सकते जो हमें अपने को वे बोलियां पढ़ाने देगा जब तक कि हम उसे पैसे न दें।

अब मेरे सामने एक महीने के मदरसों के खाते हैं, दिसम्बर, 1933 के माह में। उसमें, संख्या में, 77 अरबी छात्र रहे दिखते हैं। सरकार से सबको छात्रवृत्ति मिलती है। कुल रकम जिसका उनको भुगतान किया गया 500 रुपए प्रतिमाह है। खाते के दूसरी तरफ यह दिया हुआ है : इसमें से पिछली मई, जून, जुलाई के महीनों के 103 रुपए कम कर दें जो अंग्रेजी के बाहरी विद्यार्थियों से वसूल किए गए हैं।

मुझे बताया गया है कि स्थानीय अनुभव नहीं होने के कारण मुझे इन चीजों पर आश्चर्य होता है और यह भी कि भारत में यह फैशन नहीं है कि छात्र अपने खर्च पर अध्ययन करें। इससे मेरी राय और पुष्ट होती है। दुनिया के किसी भाग में कभी भी यह जरूरी नहीं हो सकता कि लोगों को उसके लिए पैसा देना पड़े जो वे सोचते हैं कि उनके लिए आनंददायक और लाभदायक है। इस नियम का भारत कोई अपवाद नहीं है। भारत के लोगों को जब वे भूखे हों तो चावल खाने के लिए या सर्दी के मौसम में गरम कपड़े पहनने के लिए पैसा देने की जरूरत नहीं है। जो मुद्दा हमारे पास है अब उसके

और नजदीक आते हैं। जो बच्चे पढ़ना-लिखना और थोड़ा आरंभिक गणित गांव के स्कूल मास्टर से सीखते हैं, वह बच्चों को पैसा नहीं देता है। प्रत्यक्षतः, इसलिए क्योंकि सभी यह महसूस करते हैं कि संस्कृत और अरबी ऐसी भाषाएं है, जिनका ज्ञान उसको सीखने के लिए जितनी मशक्कत करनी है उसकी भरपाई नहीं करता है। इन सब विषयों पर बाजार की स्थिति निर्णायक परीक्षा का काम करती है।

यदि उनकी जरूरत हो तो अन्य प्रमाणों की कमी नहीं है। पिछले वर्ष संस्कृत कॉलेज के अनेक पूर्व छात्रों द्वारा समिति को एक याचिका प्रस्तुत की गई थी। याचिकाकर्त्ताओं ने निवेदन किया था कि वे दस या बारह साल कॉलेज में पढ़े हैं; कि उन्होंने हिन्दू साहित्य और विज्ञान का परिचय प्राप्त किया है; कि उन्होंने विशेष दक्षता के प्रमाणपत्र प्राप्त किए हैं; और इस सबका फल क्या मिला ? ''इन सब दस्तावेजों के बावजूद'', उनका कहना है ''आपकी सम्माननीय समिति की कृपापूर्ण सहायता के बिना अपनी स्थिति को बेहतर करने की थोड़ी ही संभावना है, जिस उदासीनता के साथ अपने देशवासियों द्वारा हमें सामान्यतया देखा जाता है, उसमें प्रोत्साहन और मदद की कोई आशा शेष नहीं बचती''। वे इसलिए प्रार्थना करते हैं कि गवर्नर जनरल से उनके लिए अनुशंसा की जाए कि उन्हें सरकार में स्थान उपलब्ध कराए जाएं, उच्च गरिमा या वेतन वाले नहीं बल्कि ऐसे जिनसे वे अपना गुजारा चलाने लायक हो सकें। ''हमें साधनों की जरूरत है'', उनका कहना है ''एक शालीन जीवन जीने के लिए और अपने प्रगतिशील विकास के लिए, जो बिना उस सरकार की सहायता के हम प्राप्त नहीं कर सकते, जिसके द्वारा हमें शिक्षित और बचपन से पोषित किया गया है''। निष्कर्ष में वे बहुत दुखपूर्वक प्रस्तुतिकरण करते हुए कहते हैं कि वे निश्चित रूप से जानते हैं कि उनके शिक्षाकाल में सरकार की कभी ऐसा मंशा नहीं थी कि इतनी सारी उदारता बरतने के बाद उन्हें विपन्नता और अवहेलना की स्थिति में छोड़ दिया जाएगा। सरकार को मुआवजे के लिए दी गई याचिकाओं को देखने का मैं आदी हो चुका हूं। ये सब याचिकाएं, उनमें से सर्वाधिक गैर-वाजिब भी, इस मान्यता के साथ लिखी जाती हैं कि कुछ नुकसान उठाना पड़ा था- कि किसी के साथ कुछ गलत काम किया गया था। निश्चित रूप से ये सबसे पहले याचिकाकर्त्ता थे, जिन्होंने कभी निःशुल्क शिक्षित किए जाने के बाद मुआवजे की मांग की थी, बारह वर्ष के दौरान जनता/सरकार द्वारा समर्थन देने के बाद इन्हें साहित्य और विज्ञान से समृद्ध दुनिया में भेज दिया गया था। वे अपनी शिक्षा को एक आघात की तरह प्रस्तुत करते हैं जो उसके उपचार के लिए सरकार पर दावा करने के लिए प्रेरित करता है, एक आघात जिसके दौरान उनको दी गई छात्रवृत्ति बहुत अपर्याप्त मुआवजे के रूप में थी। और मैं संदेह नहीं करता कि वे सही हैं। उन्होंने अपनी जिन्दगी के सबसे अच्छे वर्ष वह सीखने में बर्बाद किए हैं, जिससे उन्हें न रोटी मिलती है न इज्जत। निश्चित रूप से, कुछ फायदे के साथ इन लोगों की बेकारी और विपन्नता की लागत बचाई जा सकती थी। निश्चित रूप से, लोगों को जनता पर बोझ बनने के लिए और अपने पड़ोसियों के लिए तिरस्कार की वस्तु के रूप में राज्य द्वारा कुछ कम लागत से तैयार किया जा सकता है। परन्तु हमारी नीति यही है। सच और झूठ के बीच द्वंद्व में तटस्थ नहीं रह सकते। हम इससे भी संतुष्ट नहीं हैं कि देशवासियों को उनके वंशानुगत पूर्वग्रहों के प्रभावों के हवाले उन्हें छोड़ दें जो स्वाभाविक कठिनाइयां पूर्व में प्रमाणित विज्ञान की प्रगति को रोकती हैं, उन्हें हम अपने द्वारा उत्पन्न की गई कठिनाइयां जोड़कर और बढ़ा देते हैं। सच्चाई के संवर्धन के लिए भी जो धन और लाभ नहीं दिए जाने चाहिएं, उन्हें हम गलत रुचि और गलत दर्शन पर नौछावर करते हैं।

इस प्रकार काम करते हुए हम उसी बुराई को पैदा करते हैं जिससे डरते हैं। हम उस विरोध को बनाने में लगे हैं, जो हमें नहीं मिल रहा है। अरबी और संस्कृत के कॉलेजों पर हम जो खर्च कर रहे हैं, वह सत्य के लक्ष्य के लिए बट्टेखाता है; यह उदारता से दिया गया पैसा गलती करने वाले महारथी तैयार करने के काम आ रहा है। यह एक घोंसला तैयार करने के काम आता है, मात्र बेचारे उन लोगों के लिए नहीं जो स्थान की तलाश में घूम रहे हैं बल्कि कट्टर लोगों के लिए भी जो शिक्षा की हर उपयोगी योजना के खिलाफ आवाज उठाने के लिए आवेगों और हितों दोनों से समान रूप से प्रेरित होते हैं। परिवर्तन के खिलाफ देशवासियों के बीच यदि कोई विरोध होना चाहिए, जिसकी मैं अनुशंसा करता हूं, वह विरोध हमारी अपनी व्यवस्था का प्रभाव होगा। इसके शीर्ष पर वे व्यक्ति होंगे जिनको छात्रवृत्ति दी गई है और अपने कॉलेजों में प्रशिक्षित हुए हैं। जितने ज्यादा समय तक हम अपने इस पाठ्यक्रम को चला पाएंगे, उतना ही ज्यादा दुर्जेय वह विरोध होगा। नए भरती होने वाले व्यक्तियों का विरोध प्रत्येक वर्ष और मजबूत होगा। देशज समाज को अपने हाल पर छोड़ देने से, हमें किसी प्रकार की कठिनाइयों से आशंकित होने की जरूरत नहीं है; सभी बड़बड़ाहट उन प्राच्य हितों से आएगी जिसे हम कृत्रिम साधनों से अस्तित्व में लाए हैं और उसे पोषित करके ताकतवर बनाया है।

अभी एक और तथ्य भी है जो सिद्ध करने के लिए अपने आप में काफी है कि देशवासियों की भावना, जब उन्हें अपने हाल पर छोड़ दिया जाता है, ऐसी नहीं है, जैसी कि पुरानी व्यवस्था के हिमायती प्रस्तुत करते हैं। समिति ने एक लाख रुपए का अरबी और संस्कृत में छपाई के लिए प्रावधान करना उचित समझा है। उन पुस्तकों को कोई खरीददार नहीं मिला। ऐसा बहुत कम होता है कि एक प्रति

भी बिक जाए। तेईस हजार पुस्तकें, जिनमें से अधिकांश एक पेजी या चौपेजी हैं, पुस्तकालयों में बल्कि- कहें कि इस निकाय के कबाड़खानों में भरी पड़ी हैं। समिति को प्राच्य साहित्य के विशाल भंडार के कुछ भाग से मुक्ति पाने में सफलता उन्हें ऐसे ही बांट देने में मिल जाती है। लेकिन वे उन्हें इतनी तेजी से नहीं दे सकते जितनी तेजी से वे छपती हैं। प्रत्येक वर्ष लगभग बीस हजार रुपये एक साल में रद्दी कागजों के ताजे ढेर और जमा करने पर खर्च कर दिए जाते हैं जो, मैं समझता हूं, बहुत है। पिछले तीन वर्षों में लगभग साठ हजार रुपए इस तरह खर्च किए गए हैं। अरबी और संस्कृत की पुस्तकों से, पिछले तीन वर्षों में, एक हजार रुपये भी प्राप्त नहीं हुए हैं। इसी समय में स्कूल बुक सोसायटी सात या आठ हजार अंग्रेजी की पुस्तकें प्रतिवर्ष बेचती हैं और छपाई करके खर्च ही नहीं निकालतीं, बल्कि नियोजित राशि का 20 प्रतिशत लाभ के रूप में भी वसूल करती हैं।

इस तथ्य की बहुत जिद की गई है कि हिन्दू कानून मुख्यतः संस्कृत की पुस्तकों से सीखना होता है और मुस्लिम कानून अरबी की पुस्तकों से; लेकिन, इस प्रश्न पर यह अपने को सही साबित नहीं करता। हमें संसद द्वारा हुक्म होता है कि हम भारत के कानूनों का पता लगाएं और उन्हें तह में जाकर समझने का प्रयास करें। इस मकसद से विधि आयोग की सहायता हमें उपलब्ध कराई गई है। जैसे ही कोड लागू हो जाता है, शास्त्र और हदीस मुंसिफ के सदर अमीन के लिए बेकार हो जाएंगे। मुझे आशा और विश्वास है कि जो लड़के अब मदरसों और संस्कृत कॉलेजों में प्रवेश कर रहे हैं, उनके अध्ययन पूरा करने के पहले ही यह महान कार्य पूरा हो जाएगा। यह स्पष्टतः बेहूदा होगा कि हम उभरती हुई पीढ़ी को उन चीजों की स्थिति के बारे में शिक्षित करें, जिन्हें हम उनके वयस्कता प्राप्त करने के पहले ही बदलना चाहते हैं।

लेकिन अभी एक तर्क और भी है जो और भी अधिक असमर्थनीय लगता है। ऐसा कहा जाता है कि संस्कृत और अरबी ऐसी भाषाएं हैं जिनमें दस करोड़ लोगों की धार्मिक पुस्तकें लिखी गई हैं और इस कारण वे विशेष प्रोत्साहन के योग्य हैं- यह आश्वस्त करने के लिए कि यह भारत में ब्रितानवी सरकार का कर्त्तव्य है कि वह सभी धार्मिक मामलों में न केवल सहनशीलता बरते, बल्कि निरपेक्ष भी रहे। लेकिन आन्तरिक रूप से कम मूल्यवान ऐसे साहित्य के अध्ययन को केवल इस कारण प्रोत्साहन देना है कि वह साहित्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विषयों पर सर्वाधिक गंभीर गलतियों को मन में बिठाता है, एक ऐसा काम है जिसे मुश्किल से तर्कपूर्ण या नैतिक कहा जा सकता है- उस निरपेक्षता के साथ भी जिससे हम सब सहमत हैं और जिसे पवित्रता के साथ सुरक्षित रखा जाना चाहिए। ऐसा स्वीकार किया जाता है कि बिना उपयोगी ज्ञान के भाषा बांझ है। हमें उसे सिखाना होता है क्योंकि इससे घोर अन्धविश्वास पनपते हैं। हमें झूठा इतिहास पढ़ाना होता है, गलत खगोलशास्त्र, गलत चिकित्साशास्त्र क्योंकि हम उन्हें गलत धर्म की संगति में पाते हैं। हम यह नहीं करेंगे और मेरा विश्वास है, हम ऐसा कभी नहीं करेंगे कि हम उन्हें सरकारी प्रोत्साहन दें जो देशवासियों को ईसाई बनाने के काम में लगे हुए हैं। और जब हम ऐसा करते हैं तो क्या हम विवेकसंगत और शालीन तरीके से राज्य के राजस्व से उन आदमियों को रिश्वत दे सकते हैं कि वे अपनी युवा आयु यह सीखने में लगाएं कि गधे से छू जाने के बाद उन्हें अपने को पवित्र कैसे करना है या वेदों के किस पाठ को उन्हें बार-बार दोहराना है ताकि बकरी को मारने के अपराध का प्रायश्चित किया जा सके।

प्राच्य विद्या की पैरवी करने वालों द्वारा यह मान लिया जाता है कि इस देश का रहने वाला कोई व्यक्ति अंग्रेजी का सिर्फ ऊपरी ज्ञान प्राप्त करने से ज्यादा कुछ प्राप्त नहीं कर सकता। वे इसे सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं करते; लेकिन वे ऐसा लगातार चुपके-चुपके करते हैं। जिस शिक्षा की उनके विरोधी अनुशंसा करते हैं, उसे वे केवल वर्तनी शिक्षा मानते हैं। वे मानते हैं कि इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि प्रश्न अरबी और संस्कृत साहित्य के गहन ज्ञान और विज्ञान एक तरफ और अंग्रेजी के प्रारम्भिक सिद्धांतों का सतही ज्ञान के बीच स्थित है। यह केवल एक मान्यता नहीं है, बल्कि एक ऐसी मान्यता है जो सभी विवेकसंगत करणों और अनुभव के विपरीत है। हम जानते हैं कि सभी देशों के विदेशी हमारी भाषा पर्याप्त रूप से अच्छी तरह सीख जाते हैं जिससे उनकी पहुंच भाषा में उपलब्ध अत्यन्त गूढ़ ज्ञान तक हो जाती है। भाषा का यह ज्ञान अधिक लालित्य और अत्यन्त मुहावरेदार भाषा प्रयोग करने वाले लेखकों की रचनाओं का आनंद लेने के लिए भी पर्याप्त होता है। यहां इस शहर में ऐसे निवासी हैं जो अंग्रेजी में राजनैतिक और वैज्ञानिक प्रश्नों पर धारा-प्रवाह और सटीक चर्चा करने में बिल्कुल सक्षम हैं। मैंने उन सज्जनों को सुना है जिनमें ऐसा औदार्य और समझ थी, जो सार्वजनिक शिक्षा समिति के किसी भी सदस्य को गौरवान्वित करेगी। वास्तव में, ऐसा प्रायः नहीं होता कि इस महाद्वीप के साहित्यिक दायरों में भी कोई ऐसा विदेशी मिल जाए जो अपने को इस सहजता-सटीकता के साथ अंग्रेजी में अभिव्यक्त कर सके जैसा कि हम अनेक हिन्दुओं में देखते हैं। कोई भी, मुझे लगता है, यह मानेगा कि कोई अंग्रेज बहुत कम वर्षों में इस योग्य हो जाता है कि वह पढ़ सके, आनंद ले सके, यहां तक कि सर्वश्रेष्ठ ग्रीक लेखकों की रचनाओं की अच्छी नकल भी कर सके। एक अंग्रेज युवा को जितना समय हेरोडेटस और सोफोक्लीज को पढ़ने योग्य बनने में लगता है, उससे आधे समय में एक हिन्दू ह्यूम और मिल्टन को पढ़ने की योग्यता प्राप्त कर सकता है।

जो मैंने कहा है उसे सार रूप में प्रस्तुत करता हूं। मैं स्पष्ट सोचता हूं कि संसद के 1813 के कानून के द्वारा हम बंधे हुए नहीं हैं; हम किसी अभिव्यक्ति या निहित वचन से भी बंधे हुए नहीं है; कि जो हमारी गवेषणाएं हैं उन्हें हम जैसा चाहें काम में ले सकते हैं; कि हमें जो सर्वाधिक जानने योग्य ज्ञान है, उसके शिक्षण में उन्हें प्रयोग करना चाहिए; कि अंग्रेजी संस्कृत या अरबी जानने से अधिक बेहतर है; कि देशवासी अंग्रेजी सीखने के इच्छुक हैं और संस्कृत या अरबी सीखने के इच्छुक नहीं है; न तो कानून की भाषा, न ही धर्म की भाषा संस्कृत और अरबी का हमारी क्रियान्विति पर कोई दावा या अधिकार है; कि इस देश के वासियों को अंग्रेजी का निष्णात विद्वान बनाना संभव है- और यह कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमारे प्रयासों को निर्देशित किया जाना चाहिए।

जिन लोगों के सामान्य विचारों का मैं विरोध करता हूं उनकी एक बात से मैं पूरी तरह सहमत हूं। उनके साथ मैं महसूस करता हूं कि हमारे लिए अपने सीमित साधनों को देखते हुए, यह अंसभव है कि हम लोगों को बड़ी संख्या में शिक्षित करने का प्रयास करें। इस समय हमें अपनी भरसक कोशिश यह करनी चाहिए कि हम कुछ लोगों का एक वर्ग तैयार करें जो हमारे और करोड़ों लोगों के बीच, जिन पर हम शासन कर रहे हैं, व्याख्याकार का काम कर सकें- व्यक्तियों का एक वर्ग जो रक्त और रंग से भारतीय लेकिन रुचि, राय, नैतिकता और बुद्धि में अंग्रेज हो। इस वर्ग पर हम ये काम छोड़ दें कि वह देश की स्थानीय बोलियों को परिष्कृत करे, उन्हें पाश्चात्य पारिभाषिक नामावलियों से उधार लेकर विद्वानों की शब्दावली से समृद्ध करें और उन्हें उपयुक्त मात्रा में रूपांतरित करके उनके माध्यम से विस्तृत जन-समूह तक पहुंचाएं।

मैं शिद्दत से सभी विद्यमान हितों का सम्मान करता हूं। मैं उन व्यक्तियों से उदारता से पेश आऊंगा जिनके पास आर्थिक प्रावधान की अपेक्षा के वाजिब कारण हैं। लेकिन मैं खराब व्यवस्था की जड़ पर प्रहार करूंगा जिसे अब तक हमने पोषित किया है। मैं तुरन्त अरबी और संस्कृत कॉलेज को बंद कर दूंगा। बनारस ब्राह्मणी विद्या का बड़ा केन्द्र है; दिल्ली अरबी विद्या का। यदि हम बनारस के संस्कृत कॉलेज और दिल्ली के मुस्लिम कॉलेज को रखना चाहते हैं तो यह काफी है और मेरी राय में काफी से भी ज्यादा है। यदि बनारस और दिल्ली कॉलेजों को रखा जाना चाहिए, तो मैं कम से कम यह सिफारिश करूंगा कि उन छात्रों को कोई छात्रवृत्ति नहीं दी जानी चाहिए जो बाद में कहीं के नहीं हों। शिक्षा की दो विरोधी व्यवस्थाओं के बीच लोगों को अपनी पसंद तय करने की छूट दी जानी चाहिए, लेकिन बिना हमारे द्वारा उन्हें वह सीखने के लिए रिश्वत दिए जिसे सीखने की उनकी कोई इच्छा नहीं है। जो पैसा हमें इस प्रकार उपलब्ध कराया जाएगा, उससे हम कलकत्ता के हिन्दू कॉलेज को और अधिक बड़ा प्रोत्साहन दे पाएंगे और बड़े शहरों में फोर्ट विलियम्स और आगरा स्कूलों की सभी प्रेसीडेंसियों की स्थापना कर पाएंगे, जिनमें अंग्रेजी भाषा अच्छे और पूर्ण रूप से सक्षम तरीके से पढ़ाई जा सकती हो। परिषद् में यदि श्रीमान का निर्णय ऐसा होता है जैसी मैं अपेक्षा करता हूं तो मैं अपने कर्त्तव्यों के निष्पादन में पूरे उत्साह और तत्परता से प्रवेश करूंगा। यदि, दूसरी तरफ, सरकार की राय यह बनती है कि वर्तमान व्यवस्था अपरिवर्तित रहनी चाहिए, तो मैं प्रार्थना करूंगा कि मुझे समिति की अध्ययक्षता से मुक्त होने की अनुमति दी जाए। मुझे लगता है कि तब मेरा न्यूनतम उपयोग भी नहीं हो पाएगा- मैं यह भी महसूस करता हूं कि तब मैं उसका समर्थन कर रहा हूंगा जिसे मैं केवल मोह या भ्रम मानता हूं। मेरा विश्वास है कि वर्तमान व्यवस्था में सत्य की प्रगति को गति देने की प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि गलतियों का जीवन पूरा होने पर होने वाली प्राकृतिक मृत्यु में विलम्ब पैदा करना है। मैं स्वीकार करता हूं कि हमें वर्तमान में सार्वजनिक शिक्षा बोर्ड के सम्माननीय नाम के प्रयोग करने का कोई अधिकार नहीं है। हम सार्वजनिक पैसा बर्बाद करने के लिए एक बोर्ड हैं, ऐसी पुस्तकें छापने के लिए जिनका मूल्य उस कोरे कागज के मूल्य से भी कम है, जिस पर वे छापी जाती हैं। अनर्गल इतिहास, असंगत तत्त्वमीमांसा, निर्रथक भौतिकी, हास्यास्पद धर्मविज्ञान को कृत्रिम प्रोत्साहन देने के लिए; विद्वानों की ऐसी प्रजाति तैयार करने के लिए जो पाते हैं कि उनकी विद्वता एक बाधा है, एक धब्बा है, जो सरकार पर अपना गुजारा करते हैं जब वे पढ़ते हैं और जिनकी शिक्षा उनके अपने लिए इतनी अधिक निकृष्ट है कि जब वे उसे प्राप्त कर लेते हैं तो या तो फाका करना पड़ता है या फिर अपनी बाकी बची पूरी जिन्दगी सरकार पर निर्भर रहकर गुजारनी होती है। इन मतों को ध्यान में रखते हुए मैं इस निकाय में अपनी जिम्मेदारी का पूरा हिस्सा छोड़ने के लिए, सहज रूप से इच्छुक हूं। यदि यह अपनी संपूर्ण कार्य पद्धति को बदल नहीं देती तो मैं बेकार ही नहीं बल्कि सकारात्मक रूप में अनिष्टकर भी हूंगा। ◆

(स्रोत : रीता रैले, अंग्रेजी विभाग कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय, सांता बारवरा।)

भाषान्तर : सुरेन्द्र कुशवाह